अपनी ओर से

भ्रष्टाचार और पूँजीवाद : कुछ बुनियादी सवाल और कुछ बुनियादी बातें

गुज़रा साल केवल संसदीय राजनीति ही नहीं, पूरी पूँजीवादी व्यवस्था की असलियत के चौतरफा भाण्डाफोड़ का वर्ष रहा। विभिन्न चैनलों के स्टिंग ऑपरेशनों ने सांसदों-विधायकों की कमीशनखोरी-घूसखोरी और अयाशी के तथा सरकारी महकमों में व्याप्त भ्रष्टाचार के जीते-जागते प्रमाण पूरे देश की जनता के सामने पेश किये।

संसद को बहसबाजी का अड्डा और सुअरबाड़ा कहने पर अब शायद ही किसी को आपत्ति हो। लेकिन इस पूरे मामले की थोड़ी और गहराई में जाने पर यह साफ़ हो जाता है कि इन भाण्डाफोड़ों का मकसद पूँजीवादी व्यवस्था की सारी कुरूपताओं को सामने लाकर लोगों को इसके क्रान्तिकारी विकल्प के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करना नहीं, बल्कि उन्हें एक बार फिर इस झूठी उम्मीद की गिरफ़्त में लेना है कि भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों को नियंत्रित करके पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था को जनहितकारी बनाया जा सकता है। सच्चाई यह है कि स्टिंग ऑपरेशनों के द्वारा विभिन्न चैनलों ने जो कुछ भी दिखाया, वह आम नागरिकों के लिए कोई नयी बात नहीं थी। बम्बइया फिल्मों की ही तरह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने व्यवस्था की एक असाध्य और जगजाहिर व्याधि को सनसनीखेज़ और बिकाऊ माल बनाकर पेश किया और सांसदों तथा भ्रष्ट अफसरों पर कार्रवाई के बाद बहुतेरे लोगों में यह भ्रम पैदा हुआ कि अब भ्रष्टाचार पर नियंत्रण के बाद काफ़ी-कुछ ठीक-ठाक हो जाएगा। यह वैसा ही भ्रम है जो कभी किसी शेषन-खैरनार या के. जे. राव की कार्रवाइयों से, कभी जे. पी. की सप्त क्रान्ति या वी. पी. सिंह के भ्रामक "आदर्शवाद" से, तो कभी उपभोक्ता जागरूकता आन्दोलन या सूचना के अधिकार के कानून बनने या किसी जनहित याचिका पर उच्चतम न्यायालय के निर्णय या फिर गैर-सरकारी संगठनों की सुधारवादी गतिविधियों से पैदा होता है। ये सभी उपक्रम पूँजीवादी व्यवस्था के दामन पर लगे खून और गन्दगी के दाग़-धब्बों को तरह-तरह के डिटरजेण्ट से साफ करने का काम करते हैं और बड़ी कुटिलता से लोगों को इसी व्यवस्था के दायरे में जीते हुए, सुधार की उम्मीदें पाले रहने के लिए प्रेरित करते हैं।

भ्रष्टाचार और अनैतिकता पूँजीवादी व्यवस्था की मूलभूत बीमारी नहीं बल्कि इसका एक 'बाई प्रोडक्ट' है। हर किस्म का पूँजीवाद मज़दूरों के अतिरिक्त श्रम को निचोड़कर मुनाफ़ा कमाने पर टिका होता है। इस प्रक्रिया में वह मज़दूरों की श्रम शक्ति को सस्ती से सस्ती दरों पर ख़रीदता है। मज़दूरों की श्रम शक्ति के बाज़ार मूल्य को ज़्यादा से ज़्यादा नीचे लाने के लिए वह भारी मेहनतकश आबादी को बेरोज़गार बनाकर सड़कों पर धकेल देता है और उन्नत मशीनों के जरिये कम से कम मज़दूर लगाकर ज़्यादा से ज़्यादा उत्पादन करके अपने मुनाफ़े की दर को लगातार बढ़ाने की कोशिश में लगा रहता है। पूँजीवाद अपनी स्वतःस्फूर्त गति से धनी-ग़रीब के अन्तर को बढ़ाता जाता है और बेरोज़गारी को बनाए रखता है। भुखमरी, कुपोषण, वेश्यावृत्ति आदि इसकी अपरिहार्य परिणति होते हैं। पूँजीवादी समाज में लोभ-लाभ और गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा की संस्कृति जनता को भी अपने प्रभाव में ले लेती है और इसके चलते पूँजीवादी लोभ-लाभ-लूट को नैसर्गिक मानवीय वृत्ति मानने की प्रवृत्ति, अलगाव की मानसिकता, सामाजिकता एवं सामूहिकता का निषेध, तरह-तरह की मानवद्रोही प्रवृत्तियाँ और मनोरोग आम हो जाते हैं। पूँजीवादी कला-साहित्य-संस्कृति और शिक्षा व्यवस्था का पूरा तंत्र भी इसमें अहम भूमिका निभाता है और लोगों में इस धारणा को मज़बूत बनाता है कि पूँजीवादी व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है।

पूँजीवादी उत्पादन की प्रबन्ध व्यवस्था के संचालन के लिए, उसकी सेविका राजनीतिक व्यवस्था के संचालन के लिए तथा उसे सैद्धान्तिक आधार देने के लिए पूँजीपति वर्ग मध्य वर्ग के शिक्षित लोगों के एक हिस्से को तरह-तरह की सुविधाएँ और विशेषाधिकार देकर उन्हें शारीरिक श्रम करने वालों से अलग करता है, उन्हें श्रम और श्रम करने वालों से नफ़रत करना और स्वयं को उनसे श्रेष्ठ समझना सिखाता है तथा उनके भीतर भी कई संस्तर बनाकर उन्हें खण्ड-खण्ड में बाँट देता है। यही नहीं वह मेहनतकशों को भी तरह-तरह से आपस में बाँट देता है। और उनके एक हिस्से को भी कुछ सुविधाओं के टुकड़े फेंककर व्यवस्थाधर्मी बना देता है।

इस तरह, पूँजीवादी वर्ग-व्यवस्था जो इतिहास का सबसे उन्नत वर्ग समाज और सबसे उन्नत शोषण-प्रणाली है, न केवल एक जटिल आर्थिक प्रणाली है, बल्कि एक जटिल और कुटिल राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक-वैधिक-वैचारिक प्रणाली भी है। इसकी आत्मा को महान उपन्यासकार बाल्ज़ाक से शब्द उधार लेकर यूँ उद्घाटित किया जा सकता है : *"हर सम्पत्ति-साम्राज्य अपराध की बुनियाद पर खड़ा होता है।"* सवाल पूँजीवादी व्यवस्था में अपराध, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का नहीं है। पूँजीवाद अपने शुद्धतम रूप में भी स्वयं एक अपराध है। वह स्वयं एक भ्रष्टाचार है। वह अपने आप में अनैतिक है। वह अपने शोषक चरित्र के बावजूद ऐतिहासिक तौर पर तब प्रगतिशील था जब उसने आम लोगों को साथ लेकर सामन्तवाद का ख़ात्मा किया, जब उसने तर्क और विज्ञान को आधार बनाकर मानववाद और जनवाद के विचार विकसित किये। फिर पूँजीपति वर्ग ने सत्तारूढ़ होते ही मुक्ति के दर्शन को तिलांजलि देकर जनता पर अपनी वर्गीय तानाशाही कायम की और उस पर संसदीय जनतंत्र की रेशमी चादर ओढ़ा दी। उसके बाद कुछ समय तक तो उसने उत्पादक शक्तियों का विकास कर इतिहास को आगे गति देने का काम किया, फिर वह स्वयं उनके पैरों की बेड़ी बन गया। फिर जैसे-जैसे समय बीतता गया, इसकी सारी विकृतियाँ और कुरूपताएँ अपनी स्वयंस्फूर्त गति से नग्नतम-वीभत्सतम रूपों में सामने आती चली गयीं। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था ने समय-समय पर इन विकृतियों को रोकने-ढँकने का एक आन्तरिक 'मैकेनिज़्म' भी विकसित किया है। समय-समय पर हर पूँजीवादी व्यवस्था में कुछ ऐसे नेता और सुधारक पैदा होते हैं या कुछ ऐसे कदम उठाए जाते हैं जो भ्रष्टाचार पर रोक लगाने और कुछ राजनीतिक-प्रशासनिक "सुधार" का काम करते हैं। इससे जनता एक बार फिर भ्रम में पड़ जाती है, क्रान्तिकारी परिवर्तन की तैयारी मद्धम पड़ जाती है और पूँजीवादी व्यवस्था की उम्र कुछ और बढ़ जाती है।

जो राजनेता, प्रशासक और बुद्धिजीवी पूँजीवादी व्यवस्था को चलाते हुए लुटेरों की चाकरी करते हैं और अपने लिए विशेषाधिकार और सुख-सुविधा अर्जित करते हैं वे भी अपनी "वैध" कमाई से सन्तुष्ट होने की बजाय हर सम्भव रास्ते से घूस,धोखाधड़ी और ठगी से मालामाल हो जाना चाहते हैं। लुटेरों की सेवा करते हुए वे नैतिक और ईमानदार भला हों भी क्यों? लुटेरे अपने सेवकों से यह उम्मीद भी कैसे कर सकते हैं? पूँजीवादी राजनीतिक व्यवस्था, अर्थतंत्र और प्रशासन तंत्र में भी यही भ्रष्टाचार जब चरम पर पहुँच जाता है और इससे तंग जनता की नफ़रत और गुस्सा जब व्यवस्था के लिए ख़तरा बनने लगता है तो समय-समय पर कुछ ऐसे नेता और "नायक" नैतिकता और सदाचार के "मसीहा" बनकर सामने आते हैं, न्यायपालिका ज़्यादा सक्रिय हो जाती है, कुछ कानून बनते हैं, सरकार कुछ कार्रवाई करती है और मीडिया जनहित की पैरोकारी का स्वांग भरती है। इन सबका उद्देश्य होता है स्वयं व्यवस्था के लिए संकट बन चुके भ्रष्टाचार पर कुछ अंकुश लगाना और जनता में यह भ्रम पैदा करना कि इस व्यवस्था में अभी सुधार की गुंजाइश बची हुई है। पर ये सारे उपाय अंशतः और अल्पकालिक रूप से ही प्रभावी होते हैं। जल्दी ही वेताल फिर डाल पर जा लटकता है।

पूँजीवादी समाज में "वैध" लूट के साथ अवैध लूट का अस्तित्व अपरिहार्य होता है। सफेद धन की अर्थव्यवस्था के साथ काले धन की अर्थव्यवस्था की मौजूदगी अपरिहार्य होती है। भ्रष्टाचार पूँजीवादी उत्पादन-तंत्र रूपी फैक्टरी के पिछवाड़े का गन्दा नाला है। पूँजीपति वर्ग चाहता है कि नेता, अफसर अपनी ऊँची तनख्वाहों और सुविधाओं से ही सन्तुष्ट रहें, व्यापारी कालाबाज़ारी न करें, सट्टाबाज़ार अनियंत्रित जुआघर का रूप न ले ले, काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था न हो और कारखानों में मुनाफ़ा निचोड़ने का काम सुचारू रूप से चलता रहे। पर ये सारी प्रक्रियाएँ पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति वर्ग की इच्छा से स्वतंत्र, मौजूद रहेंगी और समय-समय पर स्वयं उसके लिए समस्या बनती रहेंगी।

एक भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद की असम्भव-सी कल्पना कीजिए। ऐसे पूँजीवाद में भी मज़दूरों का शोषण होता रहेगा, उनके आन्दोलनों का दमन होता रहेगा, धनी-ग़रीब की खाई बढ़ती रहेगी, बेरोज़गारी बनी रहेगी, आम लोग जीने की बुनियादी सुविधाओं तक से वंचित रहेंगे, कुपोषण और वेश्यावृत्ति जैसे अभिशाप बने रहेंगे और प्रकृति का विनाश होता रहेगा। यानी एक भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद भी आम जनता के जीवन की बुनियादी समस्याओं का हल नहीं है। हल एक ही है और वह है पूँजीवादी व्यवस्था को इतिहास की कचरा पेटी के हवाले करना और एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना जिसमें उत्पादन मुनाफ़े के लिए नहीं, बल्कि सभी लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हो, जिसमें उत्पादन-राजकाज और समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वाले लोग काबिज़ हों और फैसला लेने की ताकत उनके हाथों में हो। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की बेड़ियों को तोड़कर ही ऐसी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण किया जा कसता है।

राजनीति और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर कर देने मात्र से ग़रीबी, असमानता, लूट और बेरोज़गारी दूर नहीं हो जाएगी। साम्राज्यवादियों और देशी पूँजीपतियों की लूट जब तक बनी रहेगी, ये समस्याएँ बनी रहेंगी। सच तो यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था को कभी पूरी तरह से भ्रष्टाचार और सामाजिक बुराइयों से मुक्त किया ही नहीं जा सकता। जब ये चीज़ें अति पर पहुँचकर व्यवस्था के लिए ही सिरदर्द और संकट बन जाती हैं तो समय-समय पर पूँजीवाद स्वयं अपने सिद्धान्तकारों, शीर्ष राजनीतिक प्रतिनिधियों, न्यायपालिका और मीडिया को माध्यम बनाकर इनपर अंकुश लगाने का काम करती है। अपने दामन पर लगे दाग़-धब्बों को वह स्वयं समय-समय पर साफ़ करती रहती है तथा अपने खुले एवं गुप्त रोगों का इलाज करती रहती है। लेकिन आम मेहनतकश जनता और उसके जागरूक इंसाफ़पसन्द युवा सपूतों के सामने सवाल पूँजीवाद की बुराइयों के ख़ात्मे का नहीं है बल्कि स्वयं पूँजीवाद के ख़ात्मे का है जो अब स्वयं मानव-इतिहास की एक बुराई बन चुका है।

बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों और समाजवादी प्रयोगों ने इस दिशा में इतिहास का पथ आलोकित किया था। लेकिन पूँजी की शक्तियों ने उन महान क्रान्तियों को पराजित करके इतिहास की प्रगतिकामी शक्तियों को पीछे धकेल दिया। इसी तथ्य की दुहाई देकर पूँजीवाद के भाड़े के प्रचारक और सिद्धान्तकार आज यह कहते नहीं थकते कि समाजवाद अव्यावहारिक

था इसलिए विफल हो गया, कि पूँजीवाद ही इतिहास की अन्तिम अवस्था है। लेकिन इतिहास का यह सबसे बड़ा झूठ है। प्रकृति की हर चीज़ और हर सामाजिक व्यवस्था की तरह पूँजीवाद भी अजर-अमर नहीं है। दास-प्रथा और सामन्तवाद के बाद जिस तरह पूँजीवाद आया, उसी तरह इसका भी स्थान समाजवाद लेगा। यदि समाजवाद नहीं तो फिर प्रकृति को तबाह कर पूँजीवाद के हाथों मानवता का विनाश–दूसरा विकल्प यही हो सकता है और तय है कि मानव जाति इस विकल्प को कदापित नहीं चुनेगी। विगत क्रान्तियों की हार "इतिहास का अन्त" नहीं थी। वह श्रम और पूँजी की शक्तियों के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर का मात्र एक चक्र थी। वह चक्र इतिहास की ह्रासमान शक्ति की विजय के साथ समाप्त हुआ और अब नयी सदी में पूरी दुनिया का परिदृश्य बताता है कि आने वाले दशकों में इस महासमर के दूसरे नये चक्र की शुरुआत अवश्यंभावी है। यूरोप में सामन्तवाद को निर्णायक शिकस्त देकर अपना विश्व-प्रभुत्व कायम करने में पूँजीवाद को लगभग चार शताब्दियों का समय लगा और इस दौरान उसे कई बार पराजित भी होना पड़ा। फिर सर्वहारा क्रान्ति के पहले संस्करण की पराजय से भला मायूसी कैसी? हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि समाजवादी क्रान्तियाँ केवल पूँजीवाद के विरुद्ध नहीं बल्कि चार हज़ार वर्षों पुरानी निजी स्वामित्व की व्यवस्था के समूचे इतिहास के विरुद्ध, समूचे वर्ग समाज के विरुद्ध केन्द्रित है। अतः जाहिर है कि ये जटिल क्रान्तियाँ हैं और इनकी प्रक्रिया लम्बी और चढ़ाव-उतार भरी होगी।

अब इक्कीसवीं शताब्दी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ पुरानी क्रान्तियों का अनुकरण करते हुए नहीं, बल्कि उनसे सीखते हुए, समाहार और आत्मालोचना करते हुए अपनी राह निकालेंगी। इन क्रान्तियों की सर्वाधिक उर्वर ज़मीन उन देशों में निर्मित हो रही है, जहाँ साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद की सर्वाधिक लूट है, साथ ही जहाँ उत्पादक शक्तियाँ एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के अन्य देशों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं, तथा जहाँ तेज़ गति से पूँजीवादी जकड़बन्दी बढ़ रही है, जहाँ सर्वहारा की संख्या, शक्ति और चेतना लगातार तेज़ गति से बढ़ रही है। इन देशों में भारत एक प्रमुख देश है। साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्तियों की परियोजना तैयार करने में भारत जैसे देशों के क्रान्तिकारियों की नयी पीढ़ी की भूमिका ऐतिहासिक होगी। लेकिन ऐसा स्वतः नहीं होगा, बल्कि इसे करना होगा।

ख़ासकर विगत पच्चीस-तीस वर्षों के दौरान साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली में, पूँजीवाद की उत्पादन एवं विनिमय प्रणाली में तथा राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद का दौर बीत चुका है। सामन्तवाद अधिकांश पूर्व उपनिवेशों में भी अवशेष मात्र में रूप में ही रह गया है। अब दुनिया में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में चन्द एक देशों में ही राष्ट्रीय जनवादी क्रान्तियाँ सम्भावित हैं। तीसरी दुनिया में भी पिछड़े पूँजीवादी देशों की ही बहुसंख्या है जहाँ नये ढंग की समाजवादी क्रान्तियाँ ही सम्भावित हैं। इन नयी क्रान्तियों की तैयारियों और प्रयोगों में, लाज़िमी तौर पर कुछ अधिक समय लगेगा। पर यह मायूस होने की बात नहीं है। इससे हमारी व्यग्रता बढ़नी चाहिए। हमें जी-जान लगाकर इस काम में जुटना होगा।

भारत के क्रान्तिकारी छात्रों-युवाओं का भी यही ऐतिहासिक मिशन हो सकता है। उन्हें संसदीय वामपंथी भाण्डों-विदूषकों के बहकावे में नहीं आना होगा। उन्हें पूँजीवादी संसदीय राजनीति के हर विभ्रम से छुटकारा पाना होगा। साथ ही, उन्हें आनन-फानन में सिर्फ अपनी बहादुरी-कुर्बानी के बूते पर, बिना व्यापक मेहनतकश जनता को संगठित किये, हथियार उठाकर क्रान्ति कर देने की अतिउत्साही, अवैज्ञानिक व्यामोह की चपेट में आने से भी बचना होगा। यह "वामपंथी" दुस्साहसवादी जल्दबाजी भी दरअसल गहरे पैठे पराजयबोध की ही अभिव्यक्ति होती है। छात्रों-युवाओं की नयी क्रान्तिकारी कतारों को लकीरी की फकीरी से बचते हुए, नयी परिस्थितियों की नयी समझ के आधार पर नये सिरे से, अपने नये क्रान्तिकारी संगठन खड़े करने होंगे। और सर्वोपरि तौर पर अपने सहयात्रियों की संख्या बढ़ानी होगी, नयी भर्ती करनी होगी। उन्हें 'समान शिक्षा, सबको रोज़गार' के अपने बुनियादी अधिकार को लेकर लड़ते हुए अपनी तैयारी करनी होगी और साथ ही व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्ति का सन्देश ले जाना होगा, उनसे समरूप हो जाना होगा और उन्हें नयी लाइन पर संगठित करना होगा।

यही एकमात्र रास्ता है। और हमें इसी रास्ते पर आगे बढ़ना होगा।

नया वर्ष
नयी यात्रा के लिए उठे
पहले कदम के नाम,
सृजन की नयी परियोजनाओं
के नाम,
बीजों और अंकुरों के नाम,
उड़ने को आतुर
शिशु पंखों के नाम!